Women's Human Rights: In the Context of Cinema

Dr. Rajshree P. More
Assistant Professor
Head, Department of Hindi
OUCW, Koti, Hyderabad

Abstract

The text discusses the pervasive issue of human rights, with a particular focus on women's rights in India. It emphasizes the equal opportunities and rights endowed by nature to all living beings but highlights the exploitation and oppression against women by selfish individuals in society. Despite the fight for rights and provisions in the Indian Constitution, the disappointment lingers as women and children, considered the foundation and future of society, have to battle for their rights against their own people. The abstract then delves into the historical context, noting the decline in the status of women during the Mughal Sultanate and the subsequent efforts of reformers like Raja Ram Mohan Roy, Swami Vivekananda, and Swami Dayanand Saraswati.

The United Nations declaration of human rights in 1948 and the inclusion of provisions by the Indian government are highlighted. The narrative shifts to the contemporary perspective, acknowledging the positive changes brought about by human rights organizations, women's commissions, media, and legal measures. The abstract references a book, "Women's Rights and Human Rights," praised by Justice Rajendra for its detailed discussion on women's rights.

DOI Number: 10.48047/NQ.2022.20.12.NQ77748 **NeuroQuantology2022;20(12): 4201-4203**

समकालीन समय का परिप्रेक्ष्य अवश्यंभावी रूप से कुछ-कुछ परिवर्तित तो हुआ है। इसका कारण मानवाधिकार संगठन, महिला आयोग, मीडिया, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, कानून व्यवस्था आदि के प्रयास है। जस्टिस राजेंद्र का कहना है- "इस पुस्तक में महिलाओं के मानवाधिकार का विस्तार से वर्णन किया गया है। विगत और वर्तमान स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रशंसनीय है। यह पुस्तक एक "गाइड" भी हैं, जो महिलाओं को सजग, सतर्क और सावधान करती है। इस विचारोत्तेजक... समग्र और उपयोगी पुस्तक के सृजन हेतु मैं लेखिका को हृदय से बधाई देता हूँ और उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।"[1]

सृष्टि के सभी प्राणियों को प्रकृति ने समान अवसर व अधिकार प्रदान किये है। परन्तु स्वार्थी पुरूष समाज ने इस अवसर का गलत लाभ उठाया है। इन्होंने महिलाओं पर अत्याचार की एक अभिशप्त और घृणित परम्परा कायम की है। यही कारण है कि आज हमें मानवाधिकार, महिलाधिकार और पता नहीं कौन-कौन से अधिकारों की चर्चा करनी पड़ रही है। हमें हमारे ही लोगों से इसके लिए लड़ना पड़ रहा है। इस सब के बावजूद यह एक राहत की बात है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में देश की महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष सुविधाएँ दी गयी हैं। यह बड़े आश्चर्य और दुःख की बात है कि महिलाएँ और बच्चे जो समाज का अभिन्न अंग है। वे समाज में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। यूँ कहना और उचित होगा कि वे इस समाज़ की नींव और भविष्य है। समाज की तथाकथित इस नींव को ही जब अपने अधिकारों के लिए अपनों से ही लड़ना पडे, माँगना

पडे या फिर छीनना पडे, तो इससे घोर निराशाजनक बात क्या होगी। समाज के लिए इससे लज्जापूर्ण बात और कोई नहीं हो सकती।

10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा ने भी मानवाधिकारों की घोषणा की थी। 8 राष्ट्रों ने मतदान में भाग लिया था। इस घोषणा में 30 धारायें हैं। इसमें जीवन, स्वतंत्रता, सुरक्षा, गुलामी, अमानवीय व्यवहार, आदि पर प्रावधान हैं। भारत सरकार ने भी इसके लिए कुछ प्रावधान बनाये है। इनमें पुरुषों को यह आदेश दिया गया है कि वे उनका सम्मान करें। यथासंभव उनकी सहायता करें उनका शोषण न करें और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाएँ।

जस्टिस राजेंद्र ममता मेहरोत्रा की कृति " महिला अधिकार और मानव अधिकार" पुस्तक की बात कर रहे हैं। वास्तव में इस पुस्तक में विस्तृत और सरल रूप से महिला अधिकारों की कुशलतापूर्वक चर्चा जारी की गई है।

भारत में मध्यकाल के समय मुगल सल्तनत के शासन के साथ नारी की अवस्था में गिरावट आने लगी थी। इस समय नारी की दशा तेज़ी से गिरने लगी। ऐसी दशा में भारत के कुछ महान नायक राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारकों ने इस ओर ध्यान दिया। नारी स्वतंत्रता, नारी सुरक्षा, नारी क्रांति जैसे विचारों को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।

ऐसे प्रयासों के कारण आज महिला मानवाधिकार एक महत्वपूर्ण और चर्चा का विषय बन गया है। संसार के कई विश्वविद्यालयों में इसके पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। आज इस विषय पर कार्यशालाओं और संगोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है। इसने यथार्थ के धरातल पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया है।

इतने वर्ष बीत जाने के पश्चात फिल्म, मीडिया, रेडियो, इंटरनेट, पत्रकारिता आदि के माध्यम से इसने अपनी पहचान बना ली है। जनचेतना में भारतीय सिनेमा के माध्यम से मानवाधिकार और महिला मानवाधिकार का विशिष्ट स्थान है। मानवाधिकार के बारे में सिनेमा सबसे अधिक जागरूकता बढ़ाने में सफल हुआ है। 7 जुलाई 1896 में टॉइम्स ऑफ इंडिया में एक फिल्म से संबंधित विज्ञापन छपा था - "The marvel of the century, the wonder of the world"2 इस प्रकार सिनेमा को एक आश्चर्यजनक आविष्कार स्वीकार किया गया है। इस प्रकार भारत में शब्दरहित फिल्मों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात जिसे आज तक फिल्मी दुनिया ने पलट कर नहीं देखा। 'बनारस के घाट', हैदराबाद की बाढ़, बंगाल का बँटवारा आदि फिल्में आयीं। भाषारहित फिल्म के भीष्म, दादा साहेब फाल्के ने "ईसा का जीवन" नाम की फिल्म देखी। दादा साहेब ने कृष्ण जीवन पर फिल्म बनाना चाहा। परन्तु महिलाओं का सिनेमा के प्रति उदासीनता के कारण नहीं कर सके। सामाजिक प्रथाओं के कारण महिलाएँ आगे आने में हिचकिचाती थी। इसीलिए उन्होंने पुरूष पात्र पर आधारित "राजा हरिश्चन्द्र" बनाई। इसी प्रकार कई पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि मनोरंजनात्मक फिल्में बनने लगी। इसके पश्चात कुछ व्यंग्यात्मक फिल्में आने लगी। परन्तु धीरे-धीरे फिल्मी दुनिया में परिवर्तन आने लगा और सामाजिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ आदि पर काम किया गया। अब "आलमआरा" जैसी फिल्म ने समसामायिक मुद्दा उठाया। अब सिनेमा यथार्थ धरातल पर बनने लगे। साहित्यिक जगत ने भी इसी प्रकार की करवट ली। सिनेमा साहित्य जगत का ही एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है। देश प्रेम और देश की आज़ादी की थीम ने तुल पकड़ा। इस प्रकार मानवाधिकार की अभिव्यक्ति ने फिल्मी दुनिया का दरवाज़ा खटखटाया।" 1932 में बनी "चंडीदास" और "अछूत कन्या" क्रमशः न्यू थियेटर तथा बॉम्बे टॉकीज़ ने बनायी।"3

ये दोनों सिनेमा अस्पृश्यता और छूआछूत जैसी सामाजिक बीमारियों को लेकर बनायी गयी थी। किसी पुरुष या महिला से केवल इस बात पर भेदभाव करना कि वह फलाना जाति, समूदाय या बिरादरी का है यह सीधे-सीधे मानवाधिकार का उल्लंघन है। अब मानवाधिकार भारतीय फिल्मी दुनिया में जन्म ले चुका था। जब उसने यौवनावस्था में कदम रखा तब बिमल रॉय जैसे निर्माता ने इसका हाथ थाम लिया। वे एक प्रगतिशील विचारधारा वाले व्यक्ति थे। उन्होंने "महिला मानवाधिकार" वाली डोर अपने हाथों में थाम ली। 'परिणिता", बिराज बहू" आदि में नारी के उत्पीड़न की अभिव्यक्ति हुई है। "सुजाता" में छुआछूत पर आधारित स्त्री उत्पीड़न की चर्चा होती है। "बंदिनी" में गाँव की लड़की पर राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव तथा कारावास जैसी पीड़ा का यथार्थ दर्शन होता है। 1957 में ऑस्कर अवार्ड में नामांकित फिल्म 'मदर इंडिया' महबूब खान के निर्देशन में आयी। 1962 में गुरुदत्त की साहब, बीबी और गुलाम बनी जो पीड़ित बहू पर आधारित थी। "अंकुर" में जमींदारों द्वारा नौकरानी का यौन शोषण पर फोकस किया गया।

समकालीन समय की "बाजीराव मस्तानी" लाल गुलाब आदि महिला मानवाधिकारों पर आधारित फिल्में आने लगी हैं।

"महिला मानवाधिकार" केवल भारत की आधुनिक समस्या ही नहीं हैं अपितु यह सारे संसार की एक गंभीर समस्या है। हाँ इस समस्या की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम निश्चित रूप से सिनेमा ही है। परन्तु इसका निवारण सिनेमा में नहीं अपितु जनमानस में है। इसे यूनानी सभ्यता की इस धारणा से समझा जा सकता है। इस सभ्यता में एक काल्पनिक नारी चरित्र "पांडोरा" थी। इसे सारे संसार की मुसीबतों की जड़ बताया गया। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि यहाँ सभ्यता के प्रारम्भ में नारी की स्थिति अच्छी थी। परन्तु कालान्तर में पुरूष के शैतानी दिमाग ने उसे दयनीय बना दिया और उसको काम देवी बना दिया। रुसी सभ्यता में भी विवाह की महत्ता का समापन हो गया। पाश्चात्य धर्मों में नारी को "पाप" कहा गया। इनमें यह मान्यता प्रसिद्ध है "प्रथम स्त्री "हव्वा' ने अपने पति प्रथम पुरूष "आदम" को जन्नत में ईश्वर की नाफ़रमानी करने को उकसाया और परिणामतः दोनों स्वर्गलोक से निकाले गये। इस तर्क पर बाद की तमाम औरतों को "जन्मगत पापी" कहा गया। इस "पाप" के प्रतिफलस्वरूप पूरी नारी जाति को प्रसव पीड़ा का "दंड" हमेशा झेलना होगा।"[4]

भारतीय सभ्यता में भी अजंता और खजुराहो की गुफाओं में स्त्री की शीलता को मूल्यहीनता प्रदान की गयी है। देवदासी प्रथा, सती प्रथा, कन्याओं की हत्या आदि इसके सशक्त उदाहरण हैं। पिता की धन संपत्ति से स्त्री का निष्कासन जैसी प्रथाएँ उनके अधिकारों का हनन करती हैं।

जहाँ नारी की बात चल रही है वहाँ भला कैसे हम प्रसाद की पुण्य पंक्तियों को भूल सकते है -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

निष्कर्ष रूप से उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि नारी जाति के अपमान और शोषण को सिनेमा प्रदर्शित करने का श्रेयस्कर कार्य कर रहा है। इसी कारण महिलाओं में अपने मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता दिखाई दे रही है। इसका एक पहलू भी है जो चिंतनीय है कि सिनेमा के माध्यम से ही नारी का प्रदर्शन और शोषण भी हो रहा है। अतः कहा जा सकता है कि सिनेमा जहाँ नारी के मानवाधिकारों का पोषक है तो कहीं न कहीं वह उसके शोषण का भी जिम्मेदार है। एक ओर सिनेमा ने उसकी तकलीफ को दर्शाया है तो दूसरी तरफ उसे बढ़ाया भी है। महिला मानवाधिकार और जनमानस की मानसिकता ही इस अभिशाप से मुक्ति दिला सकते हैं। नारी ही स्वयं जागरूक हो कर इस दासता के कारावास से मुक्ति पा सकती है।

संदर्भ

1. मानवाधिकार आयोग, सदस्य, पटना (बिहार) पृ. 7
2. मानवाधिकार की जनचेतना और फिल्म माध्यम, मुकुल श्रीवास्तव, पृ. 36
3. मानवाधिकार की जनचेतना और फिल्म माध्यम, मुकुल श्रीवास्तव, पृ. 37
4. महिला और मानवाधिकार, ममता मेहरोत्रा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 66